अध्याय तिरपनवाँ

॥श्री गणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री सिद्धारूढ़ाय नमः॥

"आपके बिना इस भव सागर में मेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं है, भय दूर करके तथा अन्य किसी भी विचार को मन में स्थान न देते हुए, आपके चरणकमलों की सहायता से मैं इस जगत में रहता हूँ। हे सतगुरुजी, आप मेरे हृदयमंदिर में प्रकट हो जाईए।"

वेदों के लिए वंदनीय तथा निर्विकार होने वाले सतगुरुजी, आपकी जयजयकार हो। आप ही जगत का सहारा, चैतन्य घन तथा सारे वेदों में दिए हुए ज्ञान का सार होकर सतगुरुजी का रूप धारण करके सगुण रूप में अवतरित हुए हैं। आपके नाम (का स्मरण या जप करने) से ही जगत पार लग रहा है, इसलिए आपका नामस्मरण करने वाले मन ही मन निश्चिंत होते हैं। क्योंकि वे जानते हैं की आप हमेशा उनके साथ ही हैं। इसलिए, वे काल से भी नहीं डरते। आपका नाम जपने से सारे सांसारिक दुख दूर हो जाते हैं, आपका ध्यान करते ही आप भक्तों को प्रसन्न हो जाते हैं, आपके सिवाय कौन उनकी रक्षा करेगा? जीवात्माएँ जब भव सागर में डूबने लगते हैं, तब वे समझ नहीं पाते की उन्हें किससे प्रार्थना करनी चाहिए। जब आप अपनी कृपा दृष्टि उन पर डालते हैं, तब वे इशारा समझ जाते हैं तथा कौन उनका रक्षक है इसका उन्हें ज्ञान होता हैं। उसपर आप दयाघन होने के कारण, आपके चरण रूपी नाव का सहारा लेकर वे चैन से भव सागर पार करते हैं। श्रोतागण, सावधान होकर श्रीसिद्धारूढ़जी की गहन जीवनी सुनिए, जिसे सुनने से सारी पीड़ाओं का विनाश होकर सुख प्राप्त होता है।

सागर किनारे कुंदापुर नाम का एक गाँव था, उस गाँव में श्रीधर नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी लक्ष्मीबाई की सतगुरुजी पर नितांत श्रद्धा थी, क्योंकि विवाह से पूर्व हुबली में उसके मायके रहते समय वह प्रतिदिन सिद्धनाथजी के दर्शन करने जाती थी। गुरुजी से अत्यंत स्नेह होने के कारण वह प्रतिदिन सिद्धाश्रम जाकर सिद्धारूढ़जी को वंदन करके आती थी। विवाह के उपरांत, पहली बार ससुराल जाते समय वह सिद्धनाथजी से मिली, उस समय उसकी आँखों से अविरत अश्रु बह रहे थे। सतगुरुजी से प्रार्थना करके उसने कहा,

"हे दयालु सतगुरुमाता, आप अपनी कृपा की छाया मुझ पर बनाए रखिए, आप जैसे दयालु गुरुदेव को छोड़कर दूर जाने का कठिन समय मुझ पर बीता है। उस अपरिचित गाँव जाने के पश्चात प्रतिदिन आप का दर्शन किए बगैर मैं कैसे दिन बिताऊँगी, इसी की मुझे चिंता हो रही है। आप इस सच्चाई को जानते ही हैं।" उसके ये करुण शब्द सुनकर दयाघन सिद्धजी ने कहा, "पुत्री, वहाँ जाने के पश्चात तुम तुम्हारी इष्टदेवता (कुलदेवता) के सगुण रूप में दर्शन करो तथा उसी देवता का नाम जपती रहो। उसीसे तुम्हें समाधान प्राप्त होगा। वही आकर तुम्हारी संकट में रक्षा करेगी, इसमें कोई संदेह नहीं है।"

सतगुरुजी वे प्रेमभरे शब्द सुनकर उसका हृदय आनंदित हुआ, उनके चरण छूकर उसने कहा, "महाराज, आप की इस कन्या को हमेशा आप का स्नेह मिलता रहे, जल्द ही आप के चरणों के दर्शन के लिए आप हमें बुलवा लीजिए!" बोलते बोलते उसका गला रुंध गया तथा आँखों से अविरत अश्रु बहने लगे। उसके उपरांत सतगुरुजी की आज्ञा लेकर वह यात्रा पर निकल पड़ी। माता पिता को छोड़ते समय उसे चिंता नहीं हुई, परंतु सिद्धनाथजी से विदा लेते समय उसे अपरिमित दुख हुआ। पति के घर जाने के पश्चात लक्ष्मीबाई प्रतिदिन सतगुरुजी के रूप का स्मरण करके उनका चिंतन करती थी; उसी प्रकार वह अत्यंत प्रेम से पति की सेवा भी करती थी। महाशिवरात्री का समारोह समीप आते ही, उसने पति से कहा, "अजी, मेरी बात सुनिए। श्रीसिद्धारूढ़ सतगुरुनाथजी, ये हुबली में रहने वाले महान यतिवर्य हैं तथा प्रतिवर्ष उनके मठ में शिवरात्री के अवसर पर बड़ी धूमधाम से समारोह मनाया जाता है। उस समय, दूर दूर के राज्यों से लाखों भक्तगण स्वामीजी के दर्शन के लिए मठ पधारते हैं, अनेक कीर्तनिये कीर्तन करते हैं, गुरुदेव के सामने दिनरात नामस्मरण होता है। प्रतिदिन सूर्योदय के समय भक्तगण वेदांत शास्त्र सुनने के लिए इकट्ठा बैठते हैं, दोपहर के समय हजारों लोगों को भोजन दिया जाता है और सायंकाल भव्य परिमाण में सतगुरुजी की पूजा होती है। उस समारोह की शोभा का मैं कैसे बयान करूँ? स्वयं उस समारोह को देखने के पश्चात ही वह अवर्णनीय है, यह हम जान जाते हैं। यह समारोह सिद्धाश्रम में एक हप्ते तक चलता है। सातवे दिन रथोत्सव होता है, रथ पर श्रीसिद्धारूढ़ महाराज विराजमान होते हैं, उस समय

सारा वैभव देखकर आँखें तृप्त होती हैं। इसलिए, मैं आप से बिनती करती हूँ की हम समारोह के लिए हुबली जाएँगे, एकबार आप महाशिवरात्री का समारोह देखेंगे तब आप का मन शांत होगा।" श्रीधर ने कहा, "लक्ष्मी, तुम जो कुछ कह रही हो, वह सत्य है इस में कोई संदेह नहीं है। परंतु तुम जानती हो की कामधाम के कारण मुझे कहीं भी जाने के लिए समय नहीं मिलता। यहाँ से गोकर्ण तीर्थ बहुत नजदीक है, वहाँ पर इसी प्रकार का अद्‌भुत समारोह मनाया जाता है, असंख्य भक्तगण आते हैं, क्योंकि वह एक अत्यंत पावन तीर्थ है।" उसपर लक्ष्मीबाई ने कहा, "अजी, आप जो कहते हैं, वह सच है। परंतु हुबली में साक्षात ईश्वर के दर्शन होते हैं। ऐसा ईश्वर, जो भक्तों के साथ स्वयं बोलता है, उस ईश्वर के उन मधुर बोलों का मैं कैसे बयान करुँ? एकबार उनका चेहरा देखते ही अनेक जन्मों के ताप का निवारण होता है तथा उनके चरणों में माथा रखने से हृदय हर्षित होता है। उन्हें देखते ही प्रत्यक्ष ईश्वर से भेंट हुई है ऐसा लगता है, उनके चेहरे से नजर नहीं हटती तथा मन आनंदित होता है।" इस प्रकार सतगुरुजी के प्रति हृदय में स्नेह होने के कारण, बोलते समय उसके बोलों से आनंद उमड़कर बहने लगा तथा सात्विक भाव जागृत होने से उसकी आँखों से आंसू बहने लगे।

उसके मन में स्थित सतगुरुजी के प्रति अपरिमित प्रेम तथा आदर देखकर श्रीधर का मन पसीज गया, उसपर मधुर शब्दों में उसने उसे कहा, "अगर समारोह देखने की तुम्हारी इतनी उत्कट मनोकामना है, तब तो हम निश्चित ही हुबली जाएँगे। अगले शुक्रवार को हम अगिन बोट से निकल पड़ेंगे।" पति के ये शब्द उसे अमृततुल्य लगे। अगले शुक्रवार को यात्रा का सारा सामान लेकर वे अगिन बोट में बैठ गये। लक्ष्मीबाई के मन में उल्लास बढ़ रहा था और वह दिनरात सिद्धनाम जप रही थी, चारो ओर उसे उन्ही का आभास हो रहा था। सागर की लहरें देखकर वह कहती थी की ये लहरें सिद्धनाथजी के प्रेम से उमड़ पड़ रही हैं। अगिन बोट के यंत्र की आवाज सुनते ही वह कहती थी की भक्तगण सिद्धनाथजी की पूजा करते समय मिलकर उनकी जयजयकार कर रहे हैं। इस प्रकार, उसका मन सतगुरुजी के प्रेम से भर जाने के कारण उसे अपने आपका विस्मरण हुआ था। उनका अगिन बोट अत्यंत तेजी से सागर के जल से

पार हो रहा था, अभाग्य से सामने से दूसरा अगिन बोट उतने ही तेजी से आया और दोनों अगिन बोटें एक दूसरे से टकरा गए। एक ही क्षण में महाभयंकर विस्फोट हुआ और उसकी आवाज से सारी दिशाएँ गूँज उठी। जिस अगिन बोट से लक्ष्मीबाई यात्रा कर रही थी, वह टूट जाने के कारण टेढ़ा मेढ़ा होकर हिलोरे ले रहा था। उसे देखकर भयभीत हुए प्रवासी थर थर काँपने लगे तथा कहने लगे की अगिन बोट अब निश्चित ही डूब जाएगा! पागलों के समान प्रवासी चारो ओर भगदड़ मचाने लगे तथा अपने बच्चों को उठाकर दूसरे अगिन बोट की ओर दौड़ने लगे। विस्फोट होकर उसकी भीषण आवाज से श्रीधर अत्यंत भयभीत हुआ और अपने प्रिय पत्नी को भूलकर बोट छोड़कर भाग गया। उसे उसकी पत्नी को छोड़कर इस प्रकार भाग जाते हुए देखकर एक प्रवासी ने रोककर पूछा, "भले मानस, तुम्हारी पत्नी को छोड़कर तुम क्यों भाग रहे हो?" श्रीधर ने कहा, "अरे भाई! यहाँ, मेरा जीवन ही जब खतरें में है, तो उसके जीने मरने की कौन चिंता करेगा? अगर आज मैं बच गया तो मुझे आसानी से दूसरी पत्नी मिल जाएगी, परंतु अगर मैं मर गया तो फिर पत्नी के जिन्दा होने से क्या लाभ?" ऐसा कहकर वह भाग गया।

इधर वह अगिन बोट डूबने लगा। सागर का जल अंदर घुसने के कारण बोट हिलते डुलते हुए जाने लगा। लक्ष्मीबाई ने देखा तो उसका पति उसे कहीं भी दिखाई न पड़ा। सभी प्रवासी दूसरे बोट की ओर जाने के लिए भागने लगे, भागते भागते ठिठकर एक दूसरे पर गिर गये; यात्रियों की भीड़ होने के कारण उन्हें राह भी नहीं दिखाई पड़ रही थी। उस भीड़ में से आगे जाने का मार्ग न मिलने के कारण, सिद्धारूढ़जी का नाम जपते हुए लक्ष्मीबाई आसपास की भीड़ में पति को खोजती हुई वहीं खड़ी थी। इतने में एक शिशु उसके पास ही उसे दिखाई पड़ा, सभी यात्री उसे छोड़कर चले जाने के कारण, वह शिशु असहायता से सुलाए हुए स्थान पर ही पड़ा था, तत्काल लक्ष्मीबाई ने उस शिशु को उठाया। स्वयं के मरने की थोड़ी भी परवाह किए बिना, दयालुता से उसने शिशु को उठाया, उतने में बोट में पूर्ण रूप से जल भर गया और वह पानी में डूबने लगी। अन्य सभी प्रवासी दूसरे बोट में बैठकर जाने लगे, परंतु सिद्धनाम जपते हुए मन ही मन निश्चिंत होकर लक्ष्मीबाई डूबने वाले बोट में ही रह गयी। इस

बोट से दूसरे बोट के बीच में होने वाली सीढ़ी भी टूट जाने के कारण, दूसरे बोट में जाने का उसका मार्ग ही अवरुद्ध हो गया; इसलिए, वह डूबते हुए बोट में ही रह गयी। इतने में बोट में जल भरकर उसके कमर तक पहुँच गया। तब शिशु को हाथ में पकड़कर उसने सतगुरुजी को अत्यंत आर्तता से आवाज दी, "हे सतगुरुनाथजी, दयानिधि, क्यों आप ने मुझे इस सागर में अकेले छोड़ दिया? डूबने वाले बोट में घुसे हुए जल में मैं खड़ी हूँ, और बाहर निकलने का मार्ग तक नहीं है। मेरा पति मेरे समीप नहीं है, वह इस समय कहाँ है, यह भी मैं नहीं जानती, दूसरा बोट अब दूर हो गया है। हे भगवान, अब मैं क्या करुँ? केवल इस शिशु को बचाने के लिए मैं पीछे रह गयी, अब आपके बिना मेरी कौन रक्षा करेगा? हे ईश्वर, अगर आप मुझ से ऊब गये हो तो कम से कम इस शिशु पर आप अपनी कृपा बनाए रखिए, हे दयालु, जल्द से जल्द आकर इस संकट में हमारी मदद कीजिए।" उसके ये करुणा भरे शब्द सुनकर दयाघन सिद्धनाथ तत्काल वहाँ प्रकट हुए, एक छोटीसी नाव में बैठकर वे उसके समीप आए। उसने शिशु उनके हाथ में दिया, उन्होंने शिशु नाव में रखकर तुरंत उसका हाथ पकड़कर उसे भी अपनी नाव में बिठाया। यात्रियों से भरा दूसरा अगिन बोट अभी भी वहीं था। शिशु के साथ लक्ष्मी छोटी नाव से यात्रियों से भरे अगिन बोट में चढ़ गयी और पल भर में छोटी नाव समेत सतगुरु महाराज अंतर्धान हो गए। ये देखकर सभी आश्चर्य से दंग रह गए, सतगुरुजी की माया कोई भी न समझ पाया। लक्ष्मी शिशु को लेकर अगिन बोट में चढ़ते ही उस शिशु की माता भागते हुए आकर लक्ष्मी के चरणों पर गिर गयी और बोली, "आप के रूप में साक्षात देवी ही आई और उसने मेरे शिशु की रक्षा की।" माता के हाथ में उसका शिशु सौंपकर यात्रियों की भीड़ में लक्ष्मी अपने पति को ढूंढ़ने लगी, परंतु मन ही मन लज्जित होने के कारण वह यात्रियों के बीच में छुपकर बैठा था। इतने में कोई उसे पकड़कर भीड़ में से खींचकर बाहर ले आया, उसे देखते ही उसके चरण कसकर पकड़कर लक्ष्मी उसे दीनता से बोली, "अजी, सतगुरुनाथजी ने प्रकट होकर मेरी रक्षा की, वे अत्यंत दयालु होते हुए अनाथों की रक्षा करते हैं, उन्हीं ने आप की रक्षा की हैं।" सतगुरुजी के प्रति उसका अपरंपार प्रेम तथा उन्होंने संकट के समय उसे बचाने के कारण उसे हुआ आनंद देखकर, सभी

यात्रियों के मन भर आए और वे आँसू बहाने लगे। उसके उपरांत लक्ष्मी ने पति के पास बैठकर उसे सारी घटना का विवरण दिया परंतु उसने उसे कतई दोषी नहीं ठहराया। सारा विवरण सुनकर उसने कहा, "आज मैं धन्य हो गया। यह मेरा सौभाग्य है की मैं तुम से फिर से मिल पाया। दुर्बुद्धि के कारण ही मैं तुम्हें संकट के समय अकेले छोड़कर भाग गया।" लक्ष्मी ने सांत्वना देते हुए उसे कहा, "अजी, आप ऐसा क्यों कहते हैं! आप बच गए तथा सुखरुप हैं, इसी में मुझे संतोष है। जिस सतगुरुजी की माया कोई भी समझ नहीं पाता, जिन्होंने मुझे यहाँ तक सुरक्षित रूप से लाकर छोडा, उन्हींने आप की भी मदद की, इस में अल्प भी संदेह नहीं है।" उसके पश्चात वे अगिन बोट से गोवा उतर गए, वहाँ से रेल से हुबली पहुँचे तथा सीधा सिद्धाश्रम जाकर सिद्धारूढ़जी से मिले, उस समय उनके मन में गुरु प्रेम का सागर उमड़ पड़ा था।

सिद्धनाथजी को देखकर लक्ष्मीबाई का गुरु प्रेम बेकाबू होकर वह रोने लगी, उन्हें सारा विवरण देते समय उसकी आँखों से अविरत आँसू बह रहे थे। सारा विवरण सुनकर सतगुरुनाथजी ने कहा, "लक्ष्मीबाई, तुम धन्य हो। उस दयाघन का स्मरण करते ही वह तुम्हें प्रसन्न हुआ। तुम्हारे हृदय में हमेशा सतगुरुनाथजी निवास करते रहने के कारण, तुम्हें संकट में देखकर ऐन मौके पर वे तुम्हारी सहायता के लिए प्रकट हुए।" सतगुरुजी के शब्द सुनकर उस दंपती का मन शांत हुआ। लक्ष्मीबाई ने कहा, "सतगुरुनाथजी, फिर से उस गाँव लौटने का मन नहीं करता। अगर आप कृपा करेंगे तो हमें उस गाँव फिर से लौटना न पड़ेगा।" उसपर सतगुरुजी ने कहा, "समारोह का सप्ताह पूर्ण होते ही तुम दोनों निर्भय होकर गाँव लौट जाओ और वहीं रहो। स्थान (गाँव) बदल जाने से नामस्मरण (जप) से मिलने वाले आनंद में कोई कमी नहीं आती। उस शुद्ध आनंद का अनुभव लेते रहने में ही आप दोनों का भला हैं।" सतगुरुजी के शब्द सुनते ही लक्ष्मी का मन शांत हुआ, उसके पश्चात शिवरात्री का समारोह देखकर, गुरुजी की आज्ञा लेकर वे अपने गाँव लौटे। फिर से गाँव लौटते समय, दोनों ने दिनरात सतगुरुजी का चिंतन करने के कारण सतगुरुजी हमेशा उनके साथ है, ऐसा उन्हें प्रतीत हुआ। ऐसे ये दयालु सतगुरु महाराज भक्तों के लिए स्वयं नाव बन जाते हैं, जिनकी कृपा से भक्तगण चैन से भव सागर पार करते हैं।

अब इस कथा का लक्ष्यार्थ सुनिए। श्रीधर को जीवात्मा समझें तथा उसकी पत्नी को सद्‌भक्ति समझें, सतगुरुजी ने उसे जीवात्मा के पास भेजा। भव सागर पार करके उन्हें सतगुरुजी के पास जाना था, परंतु आसक्ति के अगिन बोट में बैठकर वे भव सागर पार करना चाहते थे। भव सागर की उनकी यात्रा आरंभ हो गयी, इतने में सामने से वैराग्य रूपी दूसरा अगिन बोट आया और उसने तेज गति से आकर आसक्ति बोट से टकराकर उसे नष्ट किया। तत्काल जीवात्मा ने भक्ति का त्याग करके विरागी होने का स्वांग रचा; परंतु उसके मन में चैन नहीं था। इधर भक्ति को दया रूपी शिशु मिल गया, जिससे वह आसक्ति अगिन बोट में ही फँसी रही, भव सागर उसे डूबाने जा रहा था, इतने में सतगुरु महाराज प्रकट हुए। उन्होंने दया तथा भक्ति दोनों को बचाकर उनकी जीवात्मा से भेंट करायी, भक्ति से भेंट होते ही जीवात्मा को तसल्ली होकर वह आनंदित हुआ। उस पर जीवात्मा और भक्ति आकर सतगुरुजी से मिले, सतगुरुजी ने उन्हें हमेशा नामस्मरण (जपने) करने का उपदेश दिया। सिद्धसतगुरुजी अत्यंत दयालु होते हुए भव सागर तारक हैं, केवल उनका नाम जपकर सभी जीवात्माएँ भव सागर पार हो जाते हैं। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह तिरपनवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणों में अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥